एक संघर्ष की शताब्दी पर

मानव इतिहास संघर्षों का इतिहास है। इतिहास में कई बार ऐसे कठिन दौर आते हैं जब समाज के स्वाभाविक विकास की धारा निहित स्वार्थों द्वारा अवरुद्ध हो जाती है। तब किसी जलधारा के ठहराव से उत्पन्न सड़न के समान, समाज भी ठहराव से सड़ने लगता है। इन सड़न भरे दौरों में राजनैतिक-सामाजिक-शैक्षणिक संस्थाओं के नियन्ता अपनी सत्ता का इस्तेमाल केवल -अपने भौतिक-मानसिक सुखों के विस्तार और चमचों-चाटुकारों की फौज खड़ी करने में लगाते हैं। वैसे भी ऐसे दौर में ये आत्म केन्द्रित क्षुद्र जीव यथास्थिति को निरन्तरता प्रदान करने से ज्यादा कुछ सार्थक कर भी नहीं सकते हैं। ऐसे कठिन समय ही उदात्त भावनाओं, स्पष्ट दृष्टि और सर्वस्व त्याग से ओत-प्रोत महानायकों और उनके दुर्द्धर्ष समर्थकों का सृजन करते हैं जो न केवल जमाने को समझते हैं बल्कि उसे बदलने के संघर्ष को उसकी तार्किक परिणति तक पहुँचाने के ऐतिहासिक कार्यभार को बखूबी अंजाम देते हैं।

आज से एक शताब्दी पहले एक ऐसे ही संघर्ष का सूत्रपात छोटा नागपुर के पठारों तथा खासकर रांची, सिंहभूम, चक्रधरपुर आदि मुंडा बहुल क्षेत्रों में प्रारम्भ हुआ था। हालांकि वह संघर्ष तत्कालीन शक्तिशाली सत्ताधारी उपकरणों तथा यथास्थितिवादी शक्तियों जैसे सामन्तों और व्यापारियों के संगठित प्रयासों से दबा दिया गया किन्तु उस आन्दोलन की ऊष्मा ने दबे-कुचले मुण्डाओं को स्वाभिमान और मानवीय गरिमा से भर दिया था।

सारी दुनिया में मेहनतकशों की आम आबादी को तो उपेक्षित रखा ही गया है मूलनिवासियों और जन-जातियों को भी इतिहास का वाहक नहीं माना गया है। ऐसे तमाम लोग आम तौर पर इतिहास का विषय नहीं समझे जाते। ऐसे लोगों की बात होती भी है तो बस उस कन्धे की तरह जिन पर शासक सवार थे—सवार को दिखाने के लिए सवारी को दिखाना अनिवार्य होता है। पर स्पार्टकस के कलात्मक पुनर्जन्म ने और बिरसा मुंडा जैसे अनेक जननायकों ने सिद्ध कर दिया है कि उन्हें इतिहास के सलीब पर नहीं चढ़ाया जा सकता। इन जन-जातियों, आदिवासियों और तमाम मेहनतकश आबादी का इतिहास श्रम और संघर्ष का अदम्य इतिहास है।

आज उलगुलान आन्दोलन की शतवार्षिकी पर हम बिरसा मुंडा और उनके समकालीन समाज पर एक टिप्पणी प्रस्तुत कर रहे हैं।

● संपादक

बिरसा मुण्डा – संघर्ष और समय

प्लासी की पराजय के साथ ही भारत में स्थानीय राजे-रजवाड़ों और नवाबों का अवसान प्रारम्भ हो चुका था। लार्ड कार्नवालिस के स्थायी भूमि-प्रबन्ध ने जमींदारों का एक ऐसा वर्ग पैदा कर दिया था जो अस्तित्व के लिए ही अंग्रेजी शासन का मुहताज था। अतः जमीन्दार परम्परागत सामंतों की अपेक्षा अपने असामियों के प्रति अधिक निष्ठुर तथा अपने क्षुद्र स्वार्थों के प्रति ज्यादा सचेत थे। किन्तु इसी प्रबन्ध ने किसानों की हैसियत भूस्वामी से गिराकर मात्र बटाईदार की कर दी थी।

कालान्तर में यह अंग्रेजी शासन फैल कर उन दुर्गम हिस्सों में भी पहुँच गया जहाँ के निवासी इस प्रकार की सभ्यता-संस्कृति और परम्परा से नितान्त अपरिचित थे। आदिवासियों के बीच ब्रिटिश शासकों ने उनके सरदारों को जमीन्दार घोषित कर उनके ऊपर मालगुजारी जमा करने का बोझ लाद दिया। इसके अलावा समूचे आदिवासी क्षेत्र में महाजनों, व्यापारियों और लगान वसूलने वालों का एक ऐसा वर्ग घुसा दिया गया जो अपने चरित्र से ही ब्रिटिश दलाल था।

ये बिचौलिए जिन्हें मुंडा दिकू (सम्भवतः डाकू) कहते थे, ब्रिटिश तन्त्र के सहयोग से मुंडा आदिवासियों की सामूहिक खेती को तहस-नहस करने लगे और तेजी से उनकी जमीनें हड़पने लगे थे। वे तमाम कानूनी-गैर कानूनी शिकंजों में मुंडाओं को उलझाते हुए, उनके भोलेपन का लाभ उठाकर उन्हें गुलामों जैसे स्थिति में पहुँचाने में सफल रहे थे। हालांकि मुंडा सरदार इस स्थिति के विरुद्ध लगातार 30 वर्षों तक संघर्ष करते रहे किन्तु बिरसा मुंडा ने इस संघर्ष को नई ऊंचाई प्रदान की।

बिरसा मुंडा का जन्म एक बटाईदार परिवार में 1874 में हुआ था। वह अपने जीवन के शुरुआती दौर में मिशनरी में जाकर ईसाई भी हो चुका था। उस समय आमतौर पर मुण्डा लोग संकट काल में साहबी सहायता पाने के लोभ में ईसाई हो जाते पर अपने रीति-रिवाज जारी रखते थे। किन्तु बिरसा का ईसाई बनने का लक्ष्य उस समय किसी भी मुण्डा के लिए बहुमूल्य और दुर्लभ शिक्षा अर्जित करना था।

सरदारों के संघर्ष की प्रभावहीनता तथा मुंडा लोगों के गिरे हुए जीवन स्तर से खिन्न बिरसा सदैव ही उनके उत्थान और गरिमापूर्ण जीवन के लिए चिन्तित रहा करता था। 1895 में बिरसा मुंडा ने घोषित कर दिया कि '' वह धरती का ईश्वर है, उसे भगवान ने धरती पर भेजा है ताकि वह अत्याचारियों को मार कर मुंडाओं को उनके जंगल-जमीन वापस कराए तथा एक बार छोटा नागपुर के सभी परगनों पर मुंडा राज कायम करे।'' बिरसा मुंडा के इस आह्वान पर समूचे इलाके के आदिवासी उसके दर्शनों को आने लगे। इसी क्रम में वह समूचे आदिवासी गांवों में घूम-घूम कर धार्मिक-राजनैतिक प्रवचन देते हुए मुण्डाओं का राजनैतिक-सैनिक संगठन खड़ा करने में सफल हुआ। बिरसा मुण्डा ने ब्रिटिश नौकरशाही की प्रवृत्ति और औचक्क आक्रमण की दृष्टि से 24 दिसम्बर 1899 का दिन अपने आन्दोलन की शुरुआत के लिए तय किया था।

24 दिसम्बर 1899 को छोटा नागपुर का 550 वर्ग मील क्षेत्र उलगुलान की आग से दहक उठा। आन्दोलन की भीषणता इतनी अधिक थी कि उलगुलान के चौथे ही दिन रांची के डिप्टी कमिश्नर ने सीधे सेना बुलाना ही श्रेयस्कर समझा। यही नहीं तमाम ब्रिटिश

दलाल समुदाय मुण्डा बहुल इलाके से दुम दबा कर भागने लगा था।

7 जनवरी 1900 को बिरसा ने खूंटी थाने पर हमला किया। उस हमले में एक सिपाही मारा गया। अब तक मुण्डाओं के सीने में हौल बनकर घुसा हुआ पुलिसिया आतंक हवा हो गया था। किन्तु यह नितान्त दो भिन्न प्रकार के समाजों के बीच ही संघर्ष नहीं था, यह दो प्रौद्योगिकियों के बीच भी संघर्ष था। बन्दूकों के समक्ष मुण्डाओं के गुलती बलोया न टिक सके और 10 जनवरी के दिन सैलराकार की निर्णायक मुठभेड़ में हजारों मुण्डा शहीद हो गए। इस निर्णायक संघर्ष के बाद भी बिरसा संघर्ष की आग सीने में दबाए बच निकला था। बिरसा की गिरफ्तारी के लिए 500 रुपए का इनाम रखा गया। यही नहीं, मुण्डा लोग उस पुरस्कार के लिए मुहताज हों इसके लिए उन्हें भूखों मारने के प्रबन्ध भी किए गए। इसी प्रबन्ध का प्रतिफल था कि बिरसा मुण्डा फरवरी 1900 में गिरफ्तार हुआ और जेल में ही 9 जून 1900 को रहस्यमयी परिस्थितियों में मर गया।

बिरसा मुण्डा ने मुण्डाओं को संगठित करने में तमाम अवैज्ञानिक आधारों- ईश्वरीयता, धर्म आदि का आश्रय लिया था। यही नहीं संघर्ष के दौरान वस्तुगत तथ्य—सैनिक क्षमता की उपेक्षा कर छापामार संघर्ष के बजाय सीधे संघर्ष में शामिल हुआ। बिरसा की इन गलतियों से समूचे आन्दोलन को नुकसान उठाना पड़ा किन्तु क्या बिरसा इन गलतियों से बच सकते थे ?

टोना एक काल्पनिक प्रौद्योगिकी है (डी.पी. चट्टोपाध्याय)। अतः उस दौर में जब सूचना और संचार के साधन एक दम नहीं थे तथा समाज की उत्पादन प्रणाली आदिम थी - सांस्कृतिक पिछड़ेपन के कारण आन्दोलन के गठन और प्रसार के लिए ईश्वरीयता से बचा नहीं जा सकता था। पर समग्रता में बिरसा ने अपनी समूची प्रतिभा मुंडा समाज के उत्थान के लिए ही लगाई थी।

• मुक्तिबोध मंच, पन्तनगर

धर्म का धंधा-ईसा मसीह का नया चेहरा

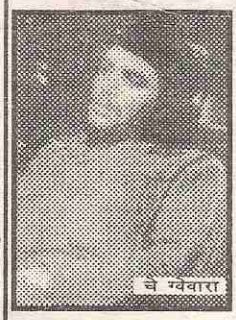

यूं तो ईश्वर और धर्म की सत्ता के अस्तित्व को लेकर तमाम सवाल उठते रहे हैं, विवाद खड़े होते रहे हैं और बहसें होती रहीं हैं। हम उन विवादों के इतिहास में जाना भी नहीं चाहते। इस बहस का अवसान तो पिछली शताब्दी की शुरुआत में ही हो गया था। वैसे सामाजिक और वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप धर्मकेन्द्रित समाज के स्थान पर मानवकेन्द्रित समाज की स्थापना के साथ ही इन बहसों-विवादों का भविष्य निर्धारित हो गया था। लेकिन, इधर, धर्म के प्रतीकों का संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण कर उनका नवीनीकरण करने की जरूरत महसूस होने लगी है। इसका एक उदाहरण पिछले वर्ष इसाई कलीसों के एक समूह द्वारा ईसा मसीह का चेहरा बदलने की चाहत व्यक्त करना है।

2000 वर्षों के बाद 'चर्चेज इन एडवरटाइजिंग नेटवर्क' (CAN) के विज्ञापनकर्ताओं ने यह प्रस्तावित किया है कि ईसा मसीह का दयनीय, करूण और बासी चेहरा बदल कर उन्हें एक उग्रपरिवर्तनवादी की छवि दी जाए; जिसके चेहरे पर ओज तथा आंखों में चमक हो। इसीलिए ईसा मसीह का प्रस्तावित नया चेहरा लैटिन अमेरिका के प्रसिद्ध कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी चे-ग्वेरा से मेल खाता हुआ है, न कि किसी आस्थावान इसाई का। चेहरा बदलने के पीछे फादर टॉम एम्ब्रोस की तर्क है कि ईसा मसीह के चेहरे से एक समर्पण का भाव झलकता है इसके विपरीत उन्हें एक क्रान्तिकारी की तरह दिखना चाहिए। यह सर्वविदित है कि चे-ग्ववोरा अपने जीवन में धर्म के कायल नहीं रहे। उन्होंने एक ही धर्मयुद्ध लड़ा-शोषित, उत्पीड़ित मानवता के लिए। लैटिन अमेरिका की आम जनता की मुक्ति ही उनका धर्म था।

अर्जेण्टीना में जन्मे चे-ग्वेवारा, एक डाक्टर थे। वे पूरे लैटिन अमेरिका को अपनी मातृभूमि मानते थे और किसी भी देश में क्रान्ति की मदद करने को हमेशा तत्पर रहते थे। वे क्यूबा के तानाशाह बतिस्ताकी सरकार के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष में फिडेल कास्त्रों के नेतृत्व वाले छापामार दस्ते के सदस्य थे। 1 जनवरी 1959 को क्यूबा की क्रान्ति की विजय के बाद उन्हें क्यूबा के राष्ट्रीय बैंक का डायरेक्टर, फिर उद्योग मंत्री बनाया गया। लेकिन इस विद्रोही आत्मा को सरकार चलाना रास नहीं आया और वे क्यूबा छोड़कर बोलीविया की क्रांति में भाग लेने के लिए चल पड़े। 1967 में छापामार दस्ते का नेतृत्व करते हुए चे-ग्वेवारा बोलीविया के जंगलों में अमेरिकी साम्राज्यवादपरस्त प्रतिक्रियावादी शासकों के हाथों शहीद हो गये।

यदि, आज 'चर्चेज इन एडवारटाइजिंग नेटवर्क' अपने कामों के प्रसार के लिए चेहरे की कांतिमय आभा और भविष्य की ओर उठी निगाहों वाली चे-ग्वेवारा की छवि को ईसा मसीह के रूप में स्थापित करना चाहता है तो इसका उद्देश्य विशुद्ध रूप से व्यापारिक ही है। दरअसल ईसा मसीह की यह छवि 'ईस्टर सर्विस' मे ज्यादा लोगों को आकृष्ट कराने के लिए एक समूह 'क्रिश्चियन इन मीडिया' द्वारा प्रस्तुत की गयी हैं। ऐसा करने से तमाम लोग सहमत नहीं हैं। लेकिन इससे धर्म का व्यापारिक स्वरूप खुलकर सामने आ गया है। इस प्रकरण में, हम किसी धर्म की प्रतिमा को अपने समय में संशोधित एवं परिवर्द्धित होते देख रहे हैं। ईसा मसीह के चेहरे में दीनता का भाव देखकर उसे बदलने वाले, धर्म के व्यापारी कहीं स्वयं ही दीन-हीन असहाय-निरुपाय तो नहीं हैं ? इससे धर्म के व्यापारियों की खुद की आस्था ही जाहिर होती है— व्यापार में आस्था! ईसा मसीह की जगह चे-ग्वेवारा का चेहरा लगाने से, कहीं चेहरों का अदल-बदल करने वालों की दुनिया के अन्त की तैयारी न शुरू हो जाए? क्योंकि चेहरा एक प्रतीक होता है, उसके साथ विचार और दर्शन भी प्रचारित होते हैं और विचार कहीं भौतिक शक्ति बन गये तो क्या होगा? इसका जवाब चे-ग्वेवारा की भविष्य की ओर उठी निगाहों में ढूढ़ां जा सकता है।

• भूपेश कुमार